

समावेश ही आगे बढ़ने का मार्ग है

अंकुर मदान

यह कहना गलत नहीं होगा कि अक्षमताओं से ग्रस्त बच्चों की शिक्षा की चुनौती के बारे में भारत में शैक्षिक विमर्श कुछ समय पहले तक उदासीन रहा है। पर अब शिक्षा के अधिकार (आर.टी.ई.) की उक्ति 'सभी के लिए शिक्षा (एजुकेशन फॉर ऑल – ई.एफ.ए.)' द्वारा प्रदान किए गए संवेग के कारण यह बात अधिकाधिक रूप से स्वीकार की जा रही है कि अक्षमताओं से ग्रस्त बच्चों को मुख्यधारा में शामिल करना ई.एफ.ए. के लक्ष्य को हासिल करने के लिए उचित और आवश्यक है। यह लेख समावेशी शिक्षा की अनेक धारणाओं और नीति निर्माण की दृष्टि से की गई उसकी व्याख्याओं का विहंगम चित्र प्रस्तुत करता है। साथ ही स्कूलों के द्वारा, उनके सभी विद्यार्थियों के लिए सीखने और सिखाने की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए, समावेशी शिक्षा की पद्धतियों को अपनाने के प्रयास किए जाने की वकालत करता है।

भारतीय सन्दर्भ में समावेशी शिक्षा

'समावेश करना तथा बाहर रखना सर्वत्र एक समान श्रेणियाँ नहीं होतीं। हर स्थिति अपने खुद के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, वैश्विक तथा सन्दर्भगत प्रभावों के द्वारा निर्मित की जाती है' (बार्टन एवं आर्मस्ट्रांग, 2007)।

समावेश की प्रक्रिया को भारत में कुछ समय पहले ही मान्यता दी गई है। इस कारण से उसकी अवधारणा तथा विचारधारा, दोनों के रूप में, एक सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत करने तथा उसकी स्पष्ट समझ विकसित करने का कार्य बहुत कठिन रहा है। समावेश की बात एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में किए जाने से, जिसका उद्भव पाश्चात्य सोच से हुआ है, उसकी उपेक्षा की गई है और अकसर उसे गलत समझा गया है। सिंघल (2005) का कथन है कि समावेशी शिक्षा "... एक ऐसी अवधारणा है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय विमर्श से ग्रहण किया गया है पर जिसका भारतीय परिदृश्य से सामंजस्य नहीं बिठाया गया है" (पृ. 9)। एक अन्य सन्दर्भ में वे कहती हैं कि समावेशी शिक्षा शब्द का उपयोग अधिक आकर्षक और राजनीतिक दृष्टि से सही प्रतीत हुआ और इसलिए इसे, इसके पीछे की धारणा को आवश्यक रूप से समझे बिना ही, शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वालों तथा नीति नियोजकों द्वारा अपना लिया गया (सिंघल, 2006)। केवल 1990 के दशक में आकर ही, भारत में समावेशी शिक्षा के आदर्श के समर्थन में कुछ आवाजें उठीं। जंगीरा (1995) तथा कौर एवं कारंत (1993) ने पाश्चात्य प्रतिमान की उपेक्षा करने के खिलाफ चेतावनी दी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इसका तिरस्कार करने से 'सभी के लिए शिक्षा' का लक्ष्य हासिल करने में विलम्ब होने की सम्भावना थी।

समावेशी शिक्षा की परिपूर्ण समझ विकसित करने में कठिनाई इस तथ्य के कारण भी खड़ी हुई कि इस शब्द को अकसर एकीकरण या समेकन के समानार्थी रूप में एक–दूसरे के स्थान पर उपयोग किया गया है। जहाँ नीति तथा कानून के वर्गीकरण में अक्षमताओं से ग्रस्त बच्चों की शिक्षा के सन्दर्भ में 'मुख्य धारा में लाना' और 'एकीकरण' जैसे शब्दों का दस्तावेजों में बहुत उपयोग किया जाता रहा है, वहीं समावेशी शिक्षा एक अपेक्षाकृत नया आया हुआ शब्द है। जैसा कि आर्मस्ट्रांग, आर्मस्ट्रांग एवं स्पैंन्डगू (2010) ने स्पष्ट किया है, समावेशी शिक्षा की उत्पत्ति तब मौजूद मुख्य धारा वाले और एकीकरण वाले प्रतिरूपों द्वारा आरोपित किए गए अवरोधों के खिलाफ एक चुनौती के रूप में हुई थी। इसलिए यह समझना प्रासंगिक होगा कि ये दोनों अवधारणाएँ, न केवल अपने अर्थ और वैचारिक जुड़ाव में बल्कि क्रियान्वयन में अपने अलग–अलग निहितार्थों की दृष्टि से भी, स्पष्ट रूप से भिन्न मानी जाएँ। जहाँ एकीकरण का आशय विशेष जरूरतों वाले बच्चों का नियमित स्कूलों में स्थानीय, भौगोलिक और सामाजिक रूप से एकीकरण होता है, और अक्षमता से ग्रस्त बच्चे की इसके लिए पूर्वतैयारी को इसकी सफलता की पूर्व–शर्त माना जाता है, वहीं समावेश एक 'पूर्ण स्कूल' के दृष्टिकोण को अपनाता है जिसमें स्कूलों से अपनी रोजमर्रा की शैक्षिक पद्धतियों में अपने को ऐसे बच्चों सहित सभी के लिए अनुकूल और समावेशी

बनाने का आग्रह किया जाता है (लिंडसे, 2007)। हालाँकि शाब्दिक भ्रम और अस्पष्टता ने सर्व–सहमति वाली समझ को दूषित कर दिया है, परन्तु भारत में समावेशी शिक्षा की भी विभिन्न व्याख्याएँ की गई हैं।

समावेशी शिक्षा के लिए नीतिगत सहयोग

पिछले दो दशक में प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़े सभी प्रमुख संस्थानों द्वारा व्यापक तौर पर और विशेषकर अक्षमताओं से ग्रस्त बच्चों के सन्दर्भ में, समावेशी शिक्षा को आगे बढ़ने के मार्ग के रूप में सैद्धान्तिक रूप से अपना लिया गया है। समावेशी शिक्षा का आरम्भ विशेष जरूरतों वाले बच्चों की शिक्षा पर आयोजित सलामांका विश्व सम्मेलन (सलामांका वर्ल्ड कान्फ्रेंस ऑन स्पेशल नीड्स एजुकेशन – यूनेस्को, 1994) में हुआ, जिसे ऐंसको एवं सीजर (2006) ने 'विशेष शिक्षा के क्षेत्र में अभी तक सामने आया सबसे महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय दस्तावेज' कहा है (पृ. 231), और उसके बाद उसे सारी दुनिया में व्यापक स्तर पर स्वीकार किया गया। भारत में ऐसी योजनाओं – जैसे कि अक्षमता ग्रस्त बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा (इंटीग्रेटेड एजुकेशन फॉर डिसएबल्ड चिल्ड्रन : आई.ई.डी.सी., 1974) जो भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई, और अक्षमता ग्रस्त बच्चों की एकीकृत शिक्षा परियोजना (प्रोजेक्ट इंटीग्रेटेड एजुकेशन ऑफ डिसएबल्ड चिल्ड्रन : पी.आई.ई.डी.) जिसे छठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान प्रारम्भ किया गया – ने कम से कम सिद्धान्त के रूप में समावेशी शिक्षा के अपनाए जाने की आधारशिला पहले ही रख दी थी। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एजुकेशन प्रोग्राम : डी.पी.ई.पी.) ने समावेशी शिक्षा के दर्शन को 1997 में अपना लिया (संजीव एवं कुमार, 2007)। अक्षमता ग्रस्त व्यक्तियों के लिए अधिनियम (समान अवसरों, अधिकारों की रक्षा तथा पूर्ण भागीदारी) [द परसन्स विद डिसएबिलिटी एक्ट – ईक्वल अपोर्चुनिटीज, प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स एण्ड फुल पार्टिसिपेशन)] 1995, में अक्षमता से ग्रस्त व्यक्तियों को समान अवसरों के दिए जाने की जरूरत का जोर देकर उल्लेख किया गया। इसमें राज्य तथा स्थानीय अधिकारियों को इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त कार्यवाही करने के लिए निर्देशित किया गया। समावेश की प्रक्रिया के लिए नीतिगत सहायता को दसवीं पंचवर्षीय योजना (2001) के दौरान सर्व शिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रमों के आरम्भ किए जाने तथा शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 से बल मिला। इस अधिनियम (जो निस्सन्देह सभी के लिए शिक्षा के दुष्प्राप्य लक्ष्य को हासिल करने के भारत के संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण मील के पत्थर के समान है) ने विशेष जरूरतों वाले बच्चों की शिक्षा के लिए भी बेहद जरूरी संरक्षण प्रदान किया (मदान एवं शर्मा, 2013)।

हालाँकि सतही तौर पर समावेश के प्रति हार्दिक नीतिगत समर्थन प्रतीत होता है, वहीं नजदीक से जाँच–पड़ताल करने पर हमें उस समर्थन की अनेक व्याख्याओं की सम्भावना दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, सिंघल (2006) ध्यान दिलाती हैं कि किस प्रकार समावेशी शिक्षा की व्याख्या, अक्षमता से ग्रस्त बच्चों के लिए पहले से उपलब्ध एन.आई.ओ.एस. तथा एन.एफ.ई. कार्यक्रमों के अलावा, 'शिक्षा की एक वैकल्पिक व्यवस्था' के रूप में की जा सकती है। उनकी दृष्टि में, जहाँ अक्षमता से ग्रस्त बच्चों को शिक्षा व्यवस्था में शामिल किए जाने पर जोर दिया गया है, वहीं यह जरूरी नहीं है कि इसका आशय मुख्यधारा से हो। समावेशी शिक्षा कार्यक्रमों को लागू करने वाले निजी स्कूलों में किए गए अध्ययनों, (सैन्धिल एवं सिंह, 2005); (सिंघल एवं राउज, 2003); (मदान एवं शर्मा, 2013), ने पाया कि ये स्कूल अक्षमता ग्रस्त बच्चों को प्रवेश देने के लिए पृथक इकाइयाँ बना देते हैं, जिन्हें रिसोर्स रूम (संसाधन कक्ष) कहा जाता है। समावेश के नाम पर इस तरह की व्यवस्था न केवल बच्चों के बीच में कृत्रिम अवरोध निर्मित कर देती है, बल्कि मुख्यधारा की शैक्षणिक तथा पाठ्यक्रम से इतर गतिविधियों में ऐसे बच्चों की भागीदारी को भी बाधित करती है। ऐसे अनेक प्रमाण दर्शाते हैं कि हालाँकि नीति के स्तर पर भारत में समावेशी शिक्षा के प्रति समर्थन आशाजनक प्रतीत होता है, परन्तु उसकी व्याख्या तथा क्रियान्वयन में भारी विसंगति दिखाई देती है।

स्कूल के स्तर पर समावेशी कार्य–प्रणालियाँ अपनाना

इन तथ्यों के प्रकाश में, शायद स्कूलों के लिए उचित होगा कि वे स्वयं ही समावेश की परिपूर्ण जानकारी पर आधारित समझ विकसित करें। यह खोजें कि वे किस प्रकार अपने स्कूल के वातावरण को समावेशी बनाने में भागीदारी निभा सकते हैं। लेखिका का आग्रह है कि निजी तथा सार्वजनिक संस्थाओं, दोनों को इस प्रक्रिया में भाग लेना चाहिए क्योंकि यह राष्ट्रीय कार्य एक ऐसी जिम्मेदारी है जिसे सभी को बराबरी से वहन करना जरूरी है। विशेष जरूरतों वाले बच्चों के जीवन में उनको सशक्त बनाने में तथा उनकी अक्षमताओं की बाधाओं को कम करने में

स्कूलों के महत्त्व को भारत तथा अन्य देशों के अनेक शोधकर्ताओं ने प्राप्त जानकारी के आधार पर रेखांकित किया है (छुआकलिंग, 2010; कॉनर्स एवं स्टाकर, 2003; व्यास, 2008, जैसा कि शर्मा एवं सेन, 2012, ने उद्धृत किया है)। परन्तु यह कहने के बाद, स्कूलों के लिए यह समझना बेहद जरूरी है कि किसी स्कूल में समावेशी शिक्षा का कार्यक्रम एक अलग से जोड़े गए अंग की तरह से नहीं चल सकता। इसके लिए प्रशासनिक तथा शिक्षण सम्बन्धी निर्णय लेने की प्रक्रिया के हर स्तर पर स्कूल में काम करने वालों की सर्वांगीण रूप से इसमें संलग्नता और भागीदारी का होना आवश्यक है। जब तक कि कोई स्कूल सिद्धान्त तथा व्यवहार के रूप में इस विचारधारा को पूरी हार्दिकता से नहीं अपनाता, तब तक इसके सफल होने की सम्भावना नहीं होती।

अकसर स्कूलों की प्रवृत्ति समावेशी पद्धतियों को एक अतिरिक्त बोझ की तरह देखने की होती है, एक ऐसा दायित्व जो उनके ऊपर एक पृथक पाठ्यक्रम विकसित करने और नई शिक्षण तकनीकें सीखने की जिम्मेदारी लाद देता है। ऐसा जान पड़ता है कि यह दृष्टिकोण इस धारणा से उपजता है कि विशेष जरूरतों वाले बच्चों के साथ काम करने में विशेषज्ञतापूर्ण शिक्षण पद्धति की जरूरत पड़ती है, और शिक्षकों के लिए उसे सीखना इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए आवश्यक है। यह धारणा खुद व्यापक रूप से प्रचलित, कमियों के सन्दर्भ में भेदपूर्ण दृष्टि वाले उस प्रतिरूप से विकसित हुई है जो अक्षमताग्रस्त बच्चों को अन्य बच्चों से गुणात्मक रूप से भिन्न मानता है। पर, इस क्षेत्र में प्रायोगिक शोध के आधार पर प्राप्त हुई नई जानकारियाँ दर्शाती हैं कि विशिष्ट रूप से भिन्न शिक्षण पद्धतियाँ अपनाने पर जोर देने के बजाय, शिक्षकों को मौजूदा शिक्षण पद्धतियों के ऐसे अनुकूलित स्वरूपों को अपनाने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जो न केवल विशेष जरूरतों वाले बच्चों के लिए, बल्कि कक्षा में सभी विद्यार्थियों के लिए लाभकारी होते हैं। जैसा कि फ्लोरियन (2009) का कथन है, "ऐसी शिक्षण पद्धति जो सभी सीखने वालों को समाहित करती है, वह सिखाने तथा सीखने के ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित रहती है जो अभाव और अन्तर देखने वाले भेदभाव पूर्ण नजरियों को तथा योग्यता के बारे में निश्चयात्मक दृष्टियों को अस्वीकर करते हैं, बल्कि वे व्यक्तियों की भिन्नताओं को मनुष्य की स्थिति का हिस्सा मानते हैं" (पृ. 9)। इसी दृष्टि से, अन्तरों वाले शिक्षण और कक्षाओं की अनेक सिफारिशें भी की गई हैं। वाल्ड्रोन एवं मैकलेस्की (2001) के अनुसार, ऐसे शिक्षण में शिक्षक उसी पाठ या इकाई का उपयोग करते हुए अपेक्षाओं तथा कार्य की पूर्णता के भिन्न–भिन्न स्तर निर्मित करता है। ऐसी कक्षा उसके सभी विद्यार्थियों की तैयारी के भिन्न–भिन्न स्तरों, उनके भिन्न–भिन्न व्यक्तित्वों तथा रुचियों को ध्यान में रख कर चलती है। परन्तु, निश्चित ही, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि कठिन बाधाओं से ग्रस्त बच्चों को हो सकता है कि इस पद्धति से लाभ न हो और इसलिए उन्हें कक्षा के बाहर भी सहायक प्रयासों की जरूरत पड़ सकती है।

यहाँ इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि मामूली अक्षमताओं से ग्रस्त जिन बच्चों को मुख्यधारा के बाहर रखा जाता है, उनकी जरूरतों को पूरा करने के साथ–साथ समावेशी शिक्षण पद्धति नियमित कक्षाओं में पहले से मौजूद ऐसे सैकड़ों विद्यार्थियों को भी लाभ पहुँचाती है जो मामूली से लेकर मध्यम दर्जे की सीखने की कठिनाइयों से प्रभावित रहते हैं, और जिनकी इन कठिनाइयों को ज्यादातर न तो पहचाना जाता है और न ही उनका समाधान किया जाता हैं। स्कूल में खराब प्रदर्शन के कारण इन बच्चों के स्कूल छोड़ देने का खतरा बना रहता है, और वे कभी भी शैक्षणिक सफलता हासिल न कर सकने के अलावा, अपने बड़े होने के पूरे दौर में, सुधारे न जा सकने वाले मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक आघातों से पीड़ित रहते हैं।

इसलिए, एक समावेशी स्कूल वह है जो ऐसे मूल्य–बोध को स्वीकार करता है जो विविधता को सराहता है, अपने विद्यार्थियों की व्यक्तिगत भिन्नताओं का आदर करता है और ऐसी शिक्षण पद्धतियों को अपनाता है जिनसे सिर्फ विशेष जरूरतों वाले बच्चे ही नहीं, बल्कि कक्षा के सभी बच्चे लाभान्वित होते हैं। इस बड़े प्रयास में अग्रणी भूमिका स्वीकार करने वाले वे स्कूल जो समावेशी पद्धतियों को लागू करने में अपनी स्वैच्छिक जिम्मेदारी को व्यक्त करते हैं, वे न केवल सभी के लिए शिक्षा के लक्ष्य को हासिल करने में अपनी भागीदारी की छाप छोड़ेंगे, बल्कि वे अन्य स्कूलों को अपना अनुकरण करने के लिए मार्ग भी प्रशस्त करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि इस देश के सभी बच्चों को गुणवत्ता और अर्थपूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए समावेश ही आगे बढ़ने का मार्ग है, और इस राष्ट्रीय कार्य में भागीदारी करने के अलावा अब कोई और विकल्प नहीं है।

References

- Ainscow, M. & Cesar, M. (2006). Inclusive education ten years after Salamance: Setting the agenda. European Journal of Psychology of Education, XXI, 3, pp.231-238.
- Armstrong, A.C., Armstrong, D. & Spandagou, I. (2010). Inclusive education: International policy and practice. London: Sage Publications.
- Barton, L. & Armstrong, F. (2007). Policy, experience and change: Cross-cultural reflections on inclusive education. London: Springer
- Florian, L. (2009). Towards an inclusive pedagogy. In P.Hick, R. Kershner, & P.T. Farrell (Eds.), Psychology for inclusive education (pp.38-49). NY: Routledge.
- Jangira, N.K. (1995). Responsive teaching. New Delhi: NCERT.
- Kaur, B. & Karanth, P. (1993). Education for young children with special needs. In T.S. Saraswathi & B. Kaur (Eds.), Human development and family studies in India (pp. 301-314). New Delhi: Sage Publications.
- Lindsay, K.G. (2007). Inclusive education in India: Interpretation, implementation and issues. Consortium for research on educational access, transitions and equity. Create pathways to access, Research Monograph, no. 15.
- Madan, A., & Sharma, N. (2013). Inclusive Education for Children with Disabilities: Preparing Schools to Meet the Challenge, Electronic Journal for Inclusive Education, 3 (1).
- Sanjeev, K. & Kumar, K. (2007). Inclusive education in India. Electronic Journal for Inclusive Education, 2 (2).
- Sandhill, A. & Singh, A. (2005) Inclusion: Some Emerging Directions in the Indian Context, paper presented at the Inclusive and Supportive Education Congress 2005, University of Strathclyde, Glasgow.
- Sharma, N. & Sen, Sharma, R. (2012). Children with disabilities and supportive school ecologies. In M. Ungar (Ed.), The social ecology of resilience: A handbook of theory and practice. doi: 10.1007/978-1-4614-0586-3_22. New York: Springer
- Singal, N. (2005a) Responding to difference: Policies to support 'inclusive education' in India, paper presented at the Inclusive and Supportive Education Congress 2005, University of Strathclyde, Glasgow.
- Singal, N. (2006). An ecosystemic approach for understanding inclusive education: An Indian case-study. European Journal of Psychology of Education, Vol. XXI, 3, pp. 239-252.
- Singal, N. & Rouse, M. (2003) 'We do inclusion': Practitioner perspectives in some 'inclusive schools' in India, in Perspectives in Education, Special Issue: The inclusion/exclusion debate in South Africa and developing countries, 21 (3), pp85-98.
- Waldron, N. & McLeskey, J. (2001). An interview with Nancy Waldron and James McLeskey. Intervention and School & Clinic, 36(3), 1-75

अंकुर मदान अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु की फैकल्टी की सदस्य हैं। वे चाइल्ड डेवलपमेण्ट तथा लर्निंग एण्ड इनक्लूसिव एजुकेशन विषयों के पाठ्यक्रम पढ़ाती हैं। उनकी दिलचस्पी प्रारम्भिक स्कूल स्तर पर विशेष जरूरतों वाले बच्चों के लिए समावेशी शिक्षा के प्रतिरूप विकसित करने में हैं। उनसे ankur.madan@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** भरत त्रिपाठी